# *मीडिया : बाजार और नैतिकता के प्रश्न*

सत्य प्रकाश सिंह*

किसी भी आवेग के सीमान्त को अनुभूति में समेट लेने को आतुर आज का जनमानस नेति–नेति के बन्धन को स्वीकार करने को तैयार नहीं है, पर क्या मीडिया के भी ऐसे व्यवहार को स्वीकार किया जा सकता है? यदि नहीं, तो क्या मीडिया की जवाबदेही और नैतिक जिम्मेदारी निर्धारित कर देनी चाहिए?

लोकतन्त्र के तीन स्तम्भ जनता के प्रति जवाबदेह हैं, लेकिन चौथा स्तम्भ–मीडिया सत्ता के प्रति वफादार भले हो, समाज के प्रति वह उतना ईमानदार नहीं है। ''आज जिस दौर में लोकतांत्रिक व्यवस्था और हिंदी प्रेस है, वहाँ दोनों की सेहत के लिए नए खतरे दिखाई दे रहे हैं। राजनीति के बदले परिवेश में इसकी चौथी स्तंभकीय भूमिका हाशिए की ओर जाती दिखाई दे रही है।''[1] ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या मीडिया के लिए नैतिकता और अनैतिकता का प्रश्न बेमानी है? इस प्रश्न पर बात करते समय हमें उन पहलुओं पर विचार करना होगा जिनके कारण मीडिया की नैतिकता प्रश्नांकित हुई है।

पहले मीडिया एक जुनून था। समाज–सेवा, लोक जागृति और जन–जन के अधिकारों के लिए लड़ाई का जरिया था। तब उससे नैतिकता की उम्मीद की जा सकती थी। आज मीडिया एक बड़ा व्यवसाय है। पूँजी के निवेश और अधिकाधिक लाभ की आकांक्षा में आदमी होने की बुनियादी शर्तें अपनी इयत्ता खोने लगी हैं। टी.आर.पी. के होड़ में खबरों को बेचने की बेचैनी इतनी बढ़ गई है कि नैतिकता का वहाँ कोई मुद्दा ही नहीं है। ''इस उद्योग से मुनाफा कमाना अनैतिक नहीं है। लेकिन लोभ और लालसाएँ 'मुनाफे' की हवस को इतना बढ़ा दे कि पूंजी का वर्चस्व पत्रकारिता के बुनियादी दायित्वों की ओर से आँखें मूदने को विवश कर दें, समाचार का संकलन न करके बाजार के गणित से खबरें गढ़ी जाने लगे, तब इस समाचार बाज़ार की नैतिकता बहस का मुद्दा बन जाती है। क्योंकि समाचार, मीडिया की आर्थिक जरूरतों और नैतिकता के बीच स्वस्थ संतुलन बनाए रखना भी स्वयं में एक नैतिक जिम्मेदारी है।''[2] पर मीडिया के पीछे के कारपोरेट घरानों को व्यवसाय और 'जवाबदेही व्यवसाय' के बीच का अन्तर समझना होगा। मुद्दा यह है कि ''क्या यह दुनिया ऐसी नहीं हो सकती थी, जिसमें उत्पादन की इकाई के रूप में पत्रकारिता फूले–फले और उसकी गंभीरता तथा जन–निष्ठा में भी फर्क न पड़े?''[3] तब मीडिया पर भी सामाजिक नैतिकता की शर्तें लागू होंगी।

रामशरण जोशी ने प्रिंट मीडिया की महत्ता और उसके सामाजिक औचित्य पर बात करते हुए कहा था कि ''प्रिंट मीडिया अर्थात मुद्रण माध्यम के आविष्कार ने सामंती व औपनिवेशिक समाजों में निर्णायक हस्तक्षेप किया, मनुष्य

* असिस्टेंट प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

में समानता, स्वतंत्रता और न्याय के बोध के अंकुरण में ऐतिहासिक भूमिका निभाई, पूँजीवाद व समाजवादी व्यवस्थाओं में राज्य और जनता के बीच सेतु बना और आज इसे लोकतंत्र का 'निर्विवाद पहरूआ' कहा जा सकता है।''[4] यह सच है कि मीडिया ने तमाम क्षेत्रों में अपनी भूमिका का कमोबेश निर्वाह किया है, पर आज मीडिया के चरित्र को देखते हुए यह कहना निर्विवाद नहीं है कि मीडिया लोकतंत्र का 'निर्विवाद पहरुआ' है।

आज कॉरपोरेट घराने खबर से पूँजी बनाने के तंत्र के रूप में मीडिया का इस्तेमाल कर रहे हैं। उनके लिए खबर वही है जो अधिक–से–अधिक लाभ दिला सके। खबरों के छपने या उनके प्रसारण में लाभ का मुद्दा हावी रहता है। जो खबर बिकती है वो छपती है, जो नहीं बिकती वो नहीं छपती, चाहे वह कितनी भी महत्त्वपूर्ण क्यों न हो। मीडिया जनोन्मुख न होकर धनोन्मुख होता जा रहा है। ''आज पत्रकारिता में समाज के रचनात्मक और सर्जनात्मक कार्यों को कम महत्व मिल रहा है। सही मायने में आधुनिक पत्रकारिता पूंजीपतियों का हथियार बन गई है। समाचार और विचारों के नाम पर सांठ–गांठ चल रही है। सांठ–गांठ ने ही पत्रकारिता को कलंकित कर दिया है।''[5] मीडिया को यह कलंक धोना होगा तभी हम उसे लोकतंत्र का 'निर्विवाद पहरूआ अस्वीकार कर पाएँगी।

आज जनता के सामने 'न्यूज' और 'पेड न्यूज' के बीच अन्तर करना एक बड़ी चुनौती है। पेड न्यूज अर्थोपार्जन के उर्वर साधन के रूप में मीडिया द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। ऐसे में पैसा देकर कोई भी व्यक्ति जैसा चाहे वैसा छपवा सकता है या प्रसारित करवा करता है। ऐसे में मीडिया अपने दायित्व से च्युत होता है और जनता भ्रम एवं अनिर्णय की स्थिति में बनी रहती है। 'पेड न्यूज' लोगों को जादुई लोक में घुमाता है और उनको भ्रमित करके उनकी चेतना को उसकी दिशा में मोड़ देता है जिस दिशा में वह चाहता है। मीडिया का यह चेहरा बहुत ही भयानक और घातक है। इससे जनता और मीडिया के बीच का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध दरकने लगा है। 'पेड न्यूज' को जिस तरह से भव्य और यथार्थ जैसा गढ़कर प्रस्तुत किया जा रहा है, वह लोगों को भ्रमित और चकाचौंध करने के लिए पर्याप्त है। खैरियत है, न्यायालय ने न्यूज और पेड़ न्यूज के बीच फर्क करके दिखाने का निर्देश मीडिया को दे दिया है। मुद्दा यह है कि यदि न्यायालय द्वारा यह कदम नहीं उठाया जाता तो क्या मीडिया न्यूज के नाम पर 'पेड न्यूज' बेचना बन्द करता? अब जब मीडिया अपने नैतिक उत्तरदायित्व के निर्वहन में विफल हो रहा है तब क्या उसका कोई और विकल्प नहीं खोजना चाहिए? सवाल बहुत हैं... जवाब यह कि मीडिया को नैतिक होना पड़ेगा। व्यवसाय नहीं, बुरा है व्यवसाय की अनैतिकता या कि नैतिकता से बेखबर होना।

मीडिया की नैतिकता सत्ता के द्वारा खूँटियों पर टाँग दी जाती है। सत्ता मीडिया को अभयदान देती है और बदले में मीडिया सत्ता को प्रशस्ति गाथा से नवाजता है। आज सत्ता और मीडिया का गठजोड़ इतना मजबूत हो गया है कि यह फर्क करना कठिन हो गया है कि सत्ता के लिए मीडिया है या मीडिया

के लिए सत्ता। सरकार प्रलोभन और आतंक दोनों ही हथियारों का प्रयोग मीडिया के नियन्त्रण के लिए करती है। 'मीडिया एक साधन का काम करता है जिसके द्वारा इस वर्ग के हितों को इस प्रकार विस्तारित किया जा सकें कि वे सम्पूर्ण सामाजिक संरचना में सामान्य रूप से फैल सकें। मीडिया शासक वर्ग के विचारधारात्मक कार्यवाहक के रूप में कार्य करता है या विचारधारात्मक दृष्टि से प्रभुत्वशाली वर्ग के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।'[6] आजकल बिहार के अखबारों में नितीश के गुणगान की खबरें अक्सर आती रहती हैं लेकिन मीडिया को नितीश सरकार का एक भी कमजोर पक्ष दिखाई नहीं देता है। इसके ठीक उल्टे जनता में नितीश के प्रति इतना आक्रोश है कि वे जिस किसी रैली में जाते हैं लोग उन पर जूते–चप्पलों की बौछार करने लगते हैं। बात बहुत साफ है कि मीडिया की आँखों पर नितीश ने विज्ञापनों की मोटी पट्टी बाँध दी है। मीडिया का ऐसा अन्धापन जनता के लिए शुभ संकेत नहीं है। लोभ और भय दोनों ही कारणों से मीडिया चुनावों में पक्षधर हो जाता है और किसी विशेष पार्टी को वोट देने के लिए लोगों को गुमराह करने लगता है।

मीडिया और सरकार के बीच का गठजोड़ जितना मजबूत होता है उतना ही मीडिया और जनता के मध्य दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। आज का मीडिया आम जनता की मीडिया नहीं है। मीडिया का व्यवसाय विज्ञापनों पर आधारित है। ये विज्ञापन एक खास किश्म के उपभोक्ता वर्ग को लुभाने के लिए बनाए जाते हैं। आम जनता की भूमिका महज इतनी है कि वह मीडिया के माया–लोक में खोई रहे। तब मीडिया इसका इस्तेमाल अपनी विचारधारा के लिए करता है। ऐसा करने में कुछ भी उसकी नजर में अनैतिक नहीं है, क्योंकि अब मीडिया ने नैतिकता को मूल्य मानना ही बन्द कर दिया है। दरअसल, 'पूँजीवादी व्यवस्था में आदर्श पत्रकारिता की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती।'[7] विज्ञापन देने वाली कम्पनियाँ विज्ञापनों की एवज में संपादकीय स्वतंत्रता का काफी हरण कर लेती है। जो पत्र बहुत निर्भीक या साहसी होते हैं, वे भी व्यवस्था की कुछ सतही विसंगतियों की ओर ही इशारा कर पाते हैं। लेकिन ज्यादातर पत्र तो खुद ही अपना शील–समर्पण करने के लिए उतावले दिखाई पड़ते हैं। जाहिर है, पत्रकारिता तब तक अपने वास्तविक काम नहीं कर सकती जब तक वह पूंजी की गिरफ्त से मुक्त न हो जाए।[8]

एक प्रमुख मुद्दा यह है कि इस व्यवस्था में संपादक की क्या भूमिका है? जब खबरों के निर्धारण का अधिकार मीडिया–मालिक या फिर विज्ञापन दाता के पास हस्तांतरित हो गया तो संपादक की भूमिका का प्रश्नांकित होना स्वाभाविक है। ''कहने की जरूरत नहीं कि यदि पत्रकारिता की प्रगति इसी दिशा में होती रही, तो संपादक नाम का प्राणी ही इस धरती से उठ जाएगा।''[9]

मीडिया और सत्य का प्रश्न भी नैतिकता के प्रश्न से सीधे जुड़ा हुआ है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि मीडिया को सत्य कहना चाहिए। प्रश्न यह है कि सत्य है क्या? वर्तमान समय में जब प्रत्येक व्यक्ति का अपना सच है, नितान्त निजी सच। एक–दूसरे से अलग और मौलिक। ऐसे में मीडिया किस सत्य की बात करे? और फिर सत्य को निर्धारित करने का अधिकार मीडिया के पास नहीं

है। मीडिया के लिए अनिवार्य है– तटस्थ होना। सत्य चाहे तटस्थ हो या न हो, तटस्थ सदैव सत्य होगा। इसलिए मीडिया की जिम्मेदारी तटस्थ रहकर खबर देना है। सत्य का निर्धारण जनता के विवेक पर निर्भर होगा बशर्ते मीडिया उस सत्य को सन्दिग्ध न बना दे। महज नैतिकता का ढोंग करके मीडिया नैतिक नहीं हो जाएगा क्योंकि 'जब नैतिकता शब्दों का जामा पहनती है तब उसकी सार्थकता बढ़ती है।'[10]

अस्तु, मीडिया को अपने नैतिक नियंत्रण में ही कार्य करना चाहिए। खबर देना एक बात है, और खबरों को अपने ढंग से प्रस्तुत करके लोगों को उसी के अनुरूप सोचने पर विवश करना दूसरी बात है। ऐसे में मीडिया को अपनी नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और लोकतन्त्र में भूमिका स्वयं निर्धारित करनी चाहिए। मीडिया से आदर्शवादी होने की उम्मीद करना अव्यावहारिक है, लेकिन 'प्रैक्टिकल आइडियालिस्ट' होने की आकांक्षा तो उससे की ही जा सकती है। साथ ही पाठक को भी यह विवेक विकसित करना होगा कि उसे मीडिया से खबर पानी है, खैरियत नहीं। इससे अधिक की उम्मीद बेमानी है।

## सन्दर्भ सूची


1. रामशरण जोशी, मीडिया विमर्श, पृष्ठ 84
2. कुमुद शर्मा, समाचार बाजार की नैतिकता, पृष्ठ 10
3. राजकिशोर, पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 10
4. रामशरण जोशी, प्रिंट मीडिया, रूपचंद गौतम, पुस्तक के 'गागर में सागर' से
5. रूपचंद गौतम प्रिंट मीडिया, पृष्ठ 38
6. इयान कोनेल, संचार माध्यम और पूंजीवादी समाज, संपा. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पृष्ठ 202
7. राजकिशोर, पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 22
8. राजकिशोर, पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 29
9. राजकिशोर, पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 52

10ण रूपचंद गौतम, प्रिंट मीडिया, पृष्ठ 38